बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 226

गहराते बादल

अर्थव्यवस्था पर छाए संकट के बादल घने होते जा रहे हैं। मूडी ने भारत को लेकर अपनी रेटिंग में जो चेतावनी दी है वह पहले से कमजोर आर्थिक संभावनाओं में आ रहे और अधिक बदलाव को चिह्नित करना ही है। आमतौर पर रेटिंग एजेंसियां धीमी गति से प्रतिक्रिया देती हैं। पूर्वानुमान लगाने वालों में से अधिकांश ने यह आशा जताई थी कि जुलाई-सितंबर तिमाही के बाद अर्थव्यवस्था में मामूली सुधार दिखाई दे सकता है (भले ही आधार अवधि में बदलाव के कारण) लेकिन शायद ऐसा नहीं हो क्योंकि इस मंदी के अपने तमाम कारण हैं।

एक राजकोषीय संकट उत्पन्न हो रहा है जो वित्त आयोग की रिपोर्ट सामने आने के बाद उजागर हो सकता है। खासतौर पर उस स्थिति में जब वह केंद्र सरकार के भारी-भरकम बकाया बिल, छिपे हुए व्यय, राजस्व में कमी तथा तमाम ऐसे कारणों से राज्यों की कर हिस्सेदारी वापस चाहता हो। सरकार वोट जुटाने के लिए नागरिकों के अनुकूल कार्यक्रमों पर व्यय कर रही है। इसकी शिकायत भला किससे की जाए। लेकिन वे कदम कहां हैं जिनकी बदौलत इनके लिए धन जुटाया जाएगा।

पूंजी का या तो गलत तरीके से इस्तेमाल हो रहा है या उसे नष्ट किया जा रहा है। वित्तीय क्षेत्र डूब रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र ढेरों नकदी गड़प रहा है। ताजा मामला दिवालिया दूरसंचार कंपनियों का है जो वेतन तक देने की स्थिति में नहीं हैं। रेलवे में ढेर सारी नकदी लगी है लेकिन आवाजाही या राजस्व के मोर्चे पर कोई खास बढ़ोतरी नजर नहीं आती। दिवालिया प्रक्रिया का किस्सा अलग ही है। गैर जवाबदेह किस्म के मुख्यमंत्री ऊर्जा अनुबंध रद्द करके पूंजी को नष्ट कर रहे हैं। विभिन्न क्षेत्रों का कुप्रबंधन करने वाले नियामक मसलन दूरसंचार क्षेत्र के नियामक आदि ने भी पूंजी को क्षति पहुंचाई है। सर्वोच्च न्यायालय भी ऐसे मामलों में कोई मदद नहीं कर पाया है। मूल बात यह है कि अर्थव्यवस्था की वृद्धि संभावनाएं अभी भी उच्च बचत और निवेश दर में निहित हैं लेकिन यदि निवेश की गई राशि बिना किसी सुराग के डूब जाए तो ऐसे में क्या कहा जा सकता है। अचल संपत्ति क्षेत्र की कहानी भी इससे अलग नहीं है।

सबसे बड़ी चिंता है आश्वस्त न होते हुए भी ऐसे आरोपों को नकारे जाने की। बड़े क्षेत्रीय कारोबारी समझौते से बाहर रहने का निर्णय भी शायद कोई विकल्प न होने की स्थिति में लिया गया। परंतु यह दर्शाना मूर्खतापूर्ण है कि यह साहसी नेतृत्व का उदाहरण है। जब बंगलादेश के पूर्व में स्थित हर देश इसमें शामिल हो और भारत नहीं तो यह बताता है कि गड़बड़ी भारत में ही है। यह बीते पांच साल में नेतृत्व की नाकामी दर्शाता है। यह सुधार की कमी है और बताता है कि हम सबसे बड़े और तेज विकसित होते क्षेत्र के साथ एकीकृत नहीं हो पाए।

पिछले मुक्त व्यापार समझौतों के भारत के पक्ष में कारगर नहीं होने को लेकर दी जा रही दलील गलत है, उनसे थोड़ा फर्क तो पड़ा। भारतीय बाजार में चीनी उत्पादों की भरमार हो जाने की आशंका वास्तविक हो सकती है और नहीं भी। लेकिन चीन के साथ व्यापार घाटा केवल आधी कहानी ही है, भारत का इस क्षेत्र के अमूमन हरेक देश के साथ बड़ा व्यापार घाटा है। ऑस्ट्रेलिया के लिए दरवाजे खोलने का मतलब कृषि क्षेत्र को खोलना है, न्यूजीलैंड के मामले में यह डेरी उद्योग है और आसियान देशों के मामले में दूसरे कृषि उत्पादों के लिए अपने दरवाजे खोलना है। 'ऐक्टिंग ईस्ट' के बजाय अपना तवज्जो 'लुकिंग वेस्ट' पर लाने के लिए अमेरिका के साथ व्यापार समझौते करने आसान नहीं होंगे, खासकर उस समय जब विश्व व्यापार संगठन में व्यापारिक विवादों पर शिकस्त मिल रही हो।

ऐसा कहा जा रहा है कि हम बाद में आरसेप का हिस्सा बन सकते हैं लेकिन घरेलू स्तर पर जीत दर्ज करने वाले लॉबी समूह संरक्षणवादी हैं तो वे सरकारी नीति-निर्माताओं पर अपना नियंत्रण क्यों कम कर देंगे? आयात शुल्कों में कटौती, कृषि उत्पादकता को दोगुना करने और बिजली दरों में क्रॉस सब्सिडी खत्म करने के लिए हमारी तैयारी की कार्ययोजना और समयसीमा कहां हैं? या संगठित रिटेलरों को हतोत्साहित होने पर क्षेत्रीय आपूर्ति शृंखलाओं में घुसने की क्या तैयारी है? सरकार ने आयात शुल्क बढ़ा दिए हैं और एक डंपिंग-रोधी चैंपियन बन चुकी है। ऐसे में भारत पहले से अधिक अंतराभिमुख होता जा रहा है।

सवाल यह है कि व्यवस्था कैसे खुल सकती है या अधिक प्रतिस्पर्द्धी हो सकती है? प्रतिस्पर्द्धी इकाइयों को वे लोग बाजार से निकाल बाहर कर दे रहे हैं जो प्रतिस्पर्द्धी नहीं हैं। पराजित ही जीत रहे हैं। पांच लाख करोड़ डॉलर की मंजिल की राह यह तो नहीं है।

साप्ताहिक मंथन
टी. एन. नाइनन

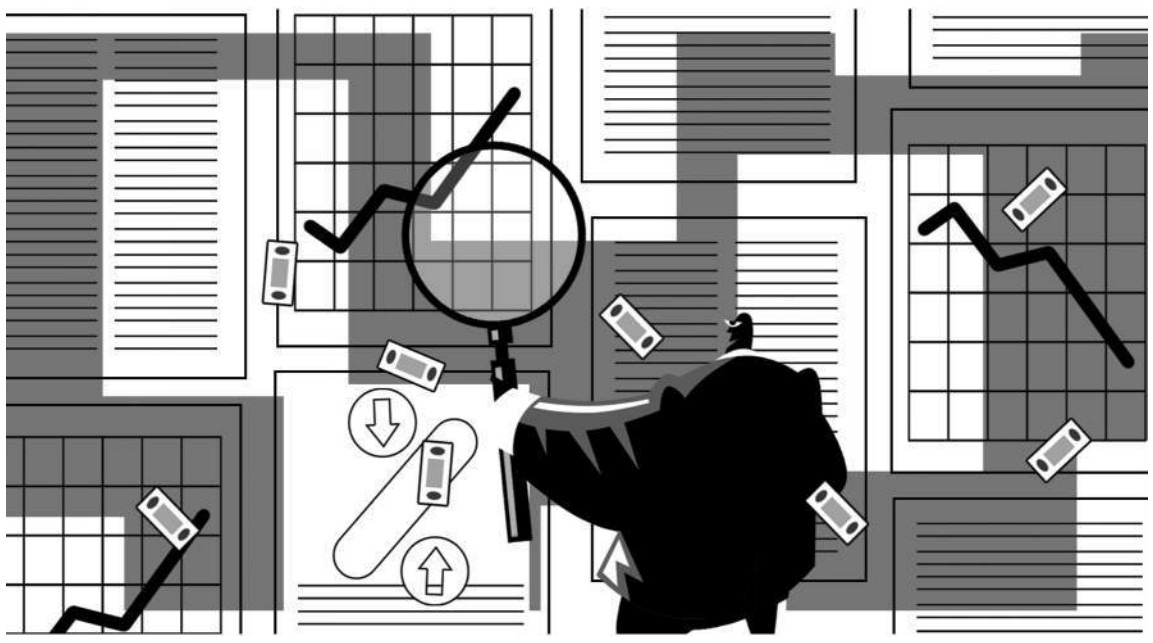

बिनय सिन्हा

ब्याज दरों का अंतरण ही सुधारेगा सेहत

उधारी की दरों एवं आरबीआई की रीपो दर के बीच का फासला ऐसे स्तर पर आ चुका है जो केवल संकट के दौर में ही नजर आता है। इस पहलू पर रोशनी डाल रहे हैं **नीलकंठ मिश्रा**

ब्याज दरों का अंतरण न होना अब संकट जैसे हालात में पहुंच चुका है। बैंकों की तरफ से बांटे गए कर्ज पर लिए जाने वाले ब्याज की औसत दर (उधारी दर) और भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) की तरफ से तय बैंकों को दिए जाने वाले कर्ज की दर (रीपो दर) के बीच का फासला काफी बढ़ गया है। यह फासला पिछले 15 महीनों में खास तौर पर बढ़ता गया है। जनवरी 2015 से लेकर अगस्त 2018 के दौरान औसत बैंक उधारी दर रीपो दर के अनुपात में ही कम होती रही थी। लेकिन अगस्त 2018 के बाद के समय में बैंक उधारी दरों शायद ही कम हुई हैं जबकि इस दौरान रीपो दर में 135 आधार अंकों की भारी कटौती हो चुकी है।

ब्याज दर कटौती में से कुछ का समय अंतराल सामान्य है। पहले नए कर्जों को प्रभावित करने वाली दर कटौती कुल लोन बुक में कमी करती है। नए कर्जों एवं पुराने कर्जों पर ब्याज दरों का फर्क थोड़ा बढ़ गया है लेकिन हमारी नजर में ऐसा मूलत: पिछले साल कुछ समय तक चले दर वृद्धि चक्र के चलते हुआ है। जून-अगस्त 2018 के दौरान रीपो दर छह फीसदी से बढ़कर 6.5 फीसदी हो गई थी। ऐसा होने पर नए कर्जों पर वसूले जाने वाले ब्याज की दर पहले तो बढ़ी और अब गिरने लगी है। यह कुछ वैसा ही है जैसे एक बहुत बड़े जहाज को अपनी दिशा बदलने में थोड़ा वक्त लगता है और दर को अगली कुछ तिमाहियों में नीचे आना चाहिए क्योंकि रीपो दर में हालिया कटौती का असर नीचे तक जाएगा। हालांकि रीपो दरों और नए कर्जों पर लिए जाने वाले ब्याज दर के बीच फासला अब काफी बड़ा हो गया है और यह सार्थक ढंग से समायोजित नहीं हो सकता है। आरबीआई के अक्टूबर से लागू बाहरी बेंचमार्क की तरफ मुड़ने से भावी दर कटौती में तेजी लाने में मदद मिल सकती है लेकिन उससे पहले ही की जा चुकी कटौती अंतरित नहीं होगी।

कई लोग इसे बैंकों के लाभ कमाने की कवायद समझ लेते हैं लेकिन ऐसा होने के साक्ष्य कम ही हैं। नए कर्ज पर उधारी दर और उधारी दर की नगण्य लागत (एमसीएलआर) के बीच का फासला ऐतिहासिक दायरे के भीतर ही है। बैंकों के शुद्ध ब्याज मार्जिन के आंकड़े भी खास बढ़े नहीं हैं।

दर हस्तांतरण की ऐसी ही समस्या बॉन्ड बाजार में भी है। बॉन्ड बाजार में जोखिम-न्यूनता की वजह से ऋण विस्तार होने की स्थिति दर्ज की गई है। मसलन, गैर बैंकिंग वित्त कंपनियों (एनबीएफसी) के बीच उधारी की 'सुरक्षित' माने जाने वाली दर और जोखिम से भरी दर के बीच का फासला बढ़ता गया है।

लेकिन ऐसी ही समस्या टर्म प्रीमियम बढ़ने की है। दीर्घावधि वाली जोखिम-मुक्त दर (जैसे 10 वर्षीय सरकारी बॉन्ड प्रतिफल) और कम अवधि की जोखिम-मुक्त दर (रीपो दर) का फासला इस प्रीमियम को दर्शाता है। यह फासला न केवल पहले से बहुत व्यापक है बल्कि अब यह वैश्विक स्तर पर भी सबसे ज्यादा है। यह कुछ गंभीर समस्याओं की तरफ इशारा करता है।

इस आधार पर ऐसा लग सकता है कि विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों (एफपीआई) की बॉन्ड मांग कम होने के कारण ऐसा है लेकिन इस समस्या के दूसरे पहलू भी हैं। पिछले दशक में आरबीआई लगातार सांविधिक तरलता अनुपात (एसएलआर) की सीमा नीचे लाता रहा है जबकि इसी अनुपात में एफपीआई की सीमा बढ़ाता रहा है। करीब एक साल पहले तक यह तरीका काम कर रहा था क्योंकि सरकारी बॉन्ड में बैंकों की हिस्सेदारी गिर गई थी और एफपीआई, घरेलू बीमा कंपनियों और आरबीआई की हिस्सेदारी बढ़ गई। लेकिन पिछले एक साल में एफपीआई काफी हद तक सरकारी बॉन्ड से दूर ही रहे हैं और बैंकों के हिस्से में गिरावट आने से आरबीआई का हिस्सा भी कम हो गया है। तुलनात्मक रूप में, आरबीआई ने खरीदा है और बैंकों ने बेचा है। एक महीना पहले तक बैंक उधारी के लिए तरलता पैदा करने के मकसद से सरकारी बॉन्ड बेच रहे थे। बढ़े हुए फासले ने हाल में समय जमा दरों और रीपो दर के बीच हाल के दिनों में फासला बढ़ा है और हमारी राय में यह समस्या का एक और लक्षण है। छोटी बचत की दरें कम करने में सरकार की हिचक से उपजा तनाव इस व्याख्या का महज एक हिस्सा है और यह वार्षिक वृद्धिपरक जमा के केवल 10 फीसदी को ही प्रभावित करता है।

हमारे विचार में बैंकों एवं बॉन्ड बाजार दोनों में कमजोर दर हस्तांतरण की असली वजह पैसे की कमजोर आपूर्ति है। चलन में मौजूद मुद्रा, बैंकों में जमा और आरबीआई के पास बैंकों के जमा को कुल योग पिछले तीन साल से करीब 10 फीसदी की दर से बढ़ता रहा है। नॉमिनल संदर्भों में 10-11 फीसदी की वार्षिक दर से बढ़ने की अपेक्षा रखने वाली अर्थव्यवस्था के लिए यह वृद्धि काफी कम है। अर्थव्यवस्था के 40 फीसदी से अधिक हिस्से के अनौपचारिक ढांचे को औपचारिक बनाने की नीति को देखते हुए पैसे की आपूर्ति अधिक तेजी से बढ़ने की जरूरत है। हालांकि वित्तीय व्यवस्था में जोखिम कम होने से सितंबर 2018 के बाद मुद्रा गुणक भले ही नीचे आ गया है लेकिन आधार मुद्रा में वृद्धि अब सुस्त पड़ते हुए 12 फीसदी ही रह गई है।

बॉन्ड एवं बैंक बाजारों में प्रभावी ब्याज दरों के नीचे नहीं आने और अर्थव्यवस्था में सुस्ती जारी रहने के बीच व्यवस्थागत ऋण वृद्धि का 10 फीसदी के नीचे गिर जाना अधिक चौंकाता नहीं है। एक साल पहले तक यह वृद्धि करीब 15 फीसदी थी। ऋण वृद्धि में गिरावट मांग और आपूर्ति दोनों कारणों से आई है। उच्च ब्याज दर होने से कर्ज की मांग हतोत्साहित होती है और वित्तीय संस्थानों की तरफ से ऋण मानदंड सख्त करने एवं ऋण वृद्धि लक्ष्यों को नीचे लाने से मांग भी आपूर्ति भी प्रभावित हो रही है। मसलन, वाहन ऋण के आवेदन खारिज करने की दर बढ़ गई है और म्युचुअल फंडों के जोखिम प्रबंधक थोड़े-बहुत जोखिम वाले बॉन्ड की भी खरीद से हतोत्साहित कर रहे हैं।

अगर व्यवस्थागत ऋण में वृद्धि के साथ व्यापक मुद्रा आपूर्ति भी एक अंक में बनी रहती है तो आर्थिक गतिविधियों में अनवरत सुधार की कल्पना कर पाना मुश्किल है। नीति-निर्माताओं के लिए चुनौती यह तय करने की है कि उधारी की दरें नॉमिनल वृद्धि दरों में गिरावट के अनुपात में नीचे आ जाए। यह उस समय तक नहीं हो सकता है जब तक बैंकों एवं बॉन्ड बाजारों तक दर हस्तांतरण में जारी अव्यवस्था दूर करने के लिए बल का इस्तेमाल न किया जाए। व्यापक रूप से विवेकपूर्ण नीति लाने के लिए चक्रीय-रोधी बदलाव एक विकल्प हो सकते हैं लेकिन बैंकों एवं बॉन्ड बाजारों में ऋण प्रसार को इस नीति से प्रभावित कर पाना मुश्किल होगा। हालांकि नीति-निर्माता आधार मुद्रा आपूर्ति की दर बढ़ा सकते हैं और उन्हें ऐसा करना भी चाहिए। इसके लिए अच्छी खासी संख्या में सरकारी बॉन्ड की खरीद की जा सकती है।

(लेखक क्रेडिट सुइस के भारतीय रणनीतिकार एवं एशिया-प्रशांत रणनीति के सह-प्रमुख हैं)

संगीत क्षेत्र का दरवाजा खोलने से बहेगी कामयाबी की नई बयार

मीडिया मंत्र
वनिता कोहली-खांडेकर

क्या आपने कभी इस बात पर गौर किया है कि संगीत कंपनियों ने नए फॉर्मेट, बाजार या विधा के विकास में निवेश करना लगभग बंद कर दिया है? संगीत की इंडिपॉप या कर्नाटक या कव्वाली जैसी सैकड़ों विधाएं हैं जो करीब 200 भाषाओं एवं बोलियों से संबंधित हैं। हम आज के समय 'व्हाई दिस कोलावेरी डी' या कोई मधुर भजन तभी सुनते हैं जब वह इंटरनेट पर वायरल हो जाता है। ऐसा नहीं होने पर सैकड़ों-हजारों गायक, गीत, वाद्य-यंत्र और संगीत संयोजन शायद ही लोगों की नजरों में आ पाते हैं। विदेश की बात छोड़िए, देश के भीतर भी इन लोगों को लोग नहीं जान पाते हैं।

वहीं लैटिन संगीत का सबसे बड़ा बाजार लैटिन अमेरिका के बाहर है। इसी तरह कोरियाई पॉप संगीत के-पॉप की वैश्विक लोकप्रियता ने कोरियाई संगीत कंपनियों के लिए अरबों डॉलर का बाजार खड़ा कर दिया है। वहीं भारत से निकलकर वैश्विक पटल पर लोकप्रिय होने वाला पिछला बड़ा गाना 'जय हो' था जिसका संगीत वर्ष 2008 में ए आर रहमान ने दिया था।

भारत के 1.67 लाख करोड़ रुपये से बड़े मनोरंजन बाजार में संगीत की भूमिका काफी अहम है, चाहे वह रेडियो, टीवी, ओटीटी, मोबाइल फोन या रेस्टोरेंट क्यों न हों? ऐसे में सवाल उठता है कि संगीत के बाजार को आगे बढ़ने से कौन रोक रहा है? जवाब है कि दो बातों के चलते ऐसा हो रहा है।

पहली, संगीत की दुनिया बेहद छोटी, बिखरी हुई और पाइरेसी की समस्या से बुरी तरह हलाकान है। ईवाई के आंकड़ों को देखें तो संगीत उद्योग ने वर्ष 2018 में महज 1,400 करोड़ रुपये की कमाई की थी। इनमें से भी 80 फीसदी हिस्सा अकेले फिल्म संगीत का था। यही वजह है कि संगीत की दुनिया में होने वाले निवेश का सबसे बड़ा हिस्सा भी फिल्म संगीत में ही जाता है। ऐतिहासिक तौर पर फिल्मों ने संगीत उद्योग के राजस्व में 90 फीसदी से भी अधिक योगदान दिया है। हालांकि पिछले वर्षों में संगीत आधारित टीवी चैनलों (चैनल वी और एमटीवी जैसे), कई तरह के फॉर्मेट (कैसेट, सीडी, स्ट्रीमिंग सेवाओं), टेलीविजन और कंसर्ट कारोबार के रफ्तार पकड़ने के साथ गैर-फिल्म संगीत को भी नया बाजार मिलने लगा है। इंडिपॉप, गजल और अन्य संगीत विधाओं का विस्तार भी ऐसे ही हुआ। लेकिन अब भी तमाम विधाओं को अपने आप में समेटने वाले फिल्म संगीत का दबदबा कायम है और यह सबसे लोकप्रिय बना हुआ है। अब डिजिटल प्लेटफॉर्म भी संगीतकारों, विधा, देश, भाषा और मिजाज के लिहाज से संगीत का वर्गीकरण कर परोसने लगे हैं।

लेकिन इन सबके बावजूद संगीत उद्योग अपना अधिक विस्तार नहीं कर पाया है और इसकी वजह यह है कि उसकी कमाई दया के लायक ही है। नियामकों ने भी संगीत उद्योग में नए निवेश को दूर रखने का काम किया है। संगीत कारोबार के पिछड़ने की यह दूसरी वजह है। जरा इसके बारे में सोचिए। संगीत कारोबार के तिगुना स्तर (3,100 करोड़ रुपये) के साथ रेडियो उद्योग काफी आगे है। रेडियो उद्योग अपने राजस्व का बड़ा हिस्सा संगीत से ही कमाता है लेकिन वह उसे रॉयल्टी के तौर पर महज 60 करोड़ रुपये ही चुकाता है। कॉपीराइट बोर्ड के वर्ष 2010 में दिए गए आदेश ने रेडियो स्टेशनों को अपने शुद्ध विज्ञापन राजस्व का दो फीसदी हिस्सा संगीत लाइसेंसधारकों को देना अनिवार्य किया हुआ है। यह फैसला उस समय आया था जब रेडियो उद्योग ऊंची लाइसेंस फीस और नुकसान के बोझ से जूझ रहा था। लेकिन अब यह उद्योग प्रतिस्पर्द्धी स्थिति में पहुंच चुका है और उसे राजनीतिक विज्ञापनों एवं सजीव कार्यक्रमों जैसे स्रोतों से राजस्व मिल रहा है। भारतीय सांख्यिकी संस्थान में असिस्टेंट प्रोफेसर मेघा पटनायक कहती हैं कि अब समय आ गया है कि 'बाजार दर तय करने के लिए स्वैच्छिक लाइसेंसिंग की अनुमति दे दी जाए।' अनिवार्य लाइसेंसिंग व्यवस्था की सितंबर 2020 में समीक्षा होने वाली है। दिल्ली स्थित थिंक-टैंक एस्या सेंटर ने भारतीय संगीत उद्योग संघ (आईएमआई) पिछले महीने इस मसले पर एक चर्चा भी की।

टीवी, ओटीटी, डीटीएच जैसे तमाम संवर्गों में सामग्री तैयार करने की लागत करीब 15-40 फीसदी होती है। ऐसा अनुचित लगता है कि रेडियो में कंटेंट पर आने वाली लागत महज दो फीसदी होती है। हालांकि अनिवार्य लाइसेंसिंग एवं दो फीसदी की लागत रेडियो उद्योग की वैश्विक समस्याएं हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ एक्ऑन स्कूल ऑफ लॉ में बौद्धिक संपदा एवं तकनीकी कानून कार्यक्रम के निदेशक मार्क शुल्ज कहते हैं कि स्वैच्छिक लाइसेंसिंग से संगीत कंपनियों को 25-50 फीसदी राजस्व हिस्सेदारी हासिल करने में मदद मिल सकती है। स्ट्रीमिंग प्लेटफॉर्म पर दो फीसदी लागत का यह नियम नहीं लागू होता है और वे संगीत अधिकार रखने वालों के साथ 50-70 फीसदी राजस्व साझा करते हैं।

स्वैच्छिक लाइसेंसिंग आदर्श लगती है लेकिन क्या यह भारत जैसे विभाजित बाजार में काम कर सकती है जहां एयरटेल या जियो जैसी बड़ी कंपनियां पहुंच पर नियंत्रण रखती हैं? शायद अनिवार्य लाइसेंसिंग की रॉयल्टी दर को बढ़ाकर 10-15 फीसदी कर दिया जाए।

हम चीन के दृष्टांत से इसे समझ सकते हैं। पांच साल पहले चीन ने एक मुक्त बाजार रॉयल्टी व्यवस्था अपना ली और पाइरेसी पर काफी सख्ती बरती। इसका नतीजा यह हुआ कि चीन के संगीत उद्योग ने मनोरंजन परिदृश्य में चार करोड़ रोजगार पैदा किए हैं और चीन दुनिया के 10 अग्रणी संगीत बाजारों में शामिल हो चुका है जबकि वर्ष 2010 में यह 39वें स्थान पर था। एक मुक्त बाजार एवं कुछ नियामकीय समर्थन के मिले-जुले असर से भारत के संगीत उद्योग की तस्वीर बदली जा सकती है।

आईएमआई के अध्यक्ष ब्लेज फर्नांडिस कहते हैं, 'रिकॉर्डेड संगीत उद्योग के दरवाजे खोलिए और हम आने वाले वर्षों में भारत से अगला डेस्पेसिटो निकलते देखेंगे। यह मेक इन इंडिया की सच्ची कहानी होगी।'

कानाफूसी

विधायकों पर नजर

भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) मध्य प्रदेश में अपने विधायकों पर बहुत करीबी निगाह बनाए हुए है। दरअसल राज्य के मुख्यमंत्री कमल नाथ ने अपने पार्टी के कार्यकर्ताओं से हाल ही में कहा था कि कांग्रेस मध्य प्रदेश विधानसभा में अपने विधायकों की संख्या में जल्दी ही कम से कम दो विधायकों का इजाफा कर सकती है। इसके बाद भाजपा में हड़बड़ी का माहौल है। पार्टी ने अपने संगठन पदाधिकारियों से कहा है कि वे विधायकों से संपर्क में रहें। खासकर उन विधायकों से जिनके खिलाफ आपराधिक प्रकरण दर्ज हैं। पार्टी ने विधायकों से भी कहा है कि वे अपने खिलाफ मामलों की ताजा जानकारी मुहैया कराएं। पार्टी को आशंका है कि कांग्रेस इन मामलों का इस्तेमाल संबंधित विधायकों के खिलाफ दबाव बनाने में कर सकती है। हाल ही में हुए झाबुआ विधानसभा उपचुनाव में भाजपा को हार का सामना करना पड़ा था। इससे पहले पार्टी के दो विधायक विधानसभा में एक विधेयक पर मत विभाजन के दौरान कांग्रेस के पक्ष में मत दे चुके हैं।

आपका पक्ष

नोटबंदी के तीन साल बाद उठते सवाल

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 8 नवंबर, 2016 की रात को 500 और 1,000 के पुराने नोट को चलन से बाहर कर दिया था। नोटबंदी का मुख्य उद्देश्य भ्रष्टाचार रोकना, नकली नोटों को निष्प्रभावी करना, आतंकवाद को रोकना, काले धन को बाहर निकलना था। नोटबंदी के पीछे का मकसद देश हित में लिया गया था लेकिन अर्थव्यवस्था पर इसका बुरा असर पड़ा। नोटबंदी के बाद 31 मई, 2017 को सीएसओ द्वारा जारी आंकड़े के अनुसार जीडीपी दर 8 प्रतिशत थी, वह 7.1 प्रतिशत पर पहुंच गई। हालांकि सरकार ने दावा किया है कि नोटबंदी का सकारात्मक असर आने वाले वर्षों में देखने मिलेगा, जबकि अर्थशास्त्रियों के मुताबिक वर्तमान आर्थिक सुस्ती के कई कारणों में नोटबंदी भी एक कारण है। वैसे नोटबंदी की वजह से डिजिटल अर्थव्यवस्था में तेज बढ़ोतरी देखी गई जिससे आर्थिक लेनदेन में पारदर्शिता आई। नोटबंदी के बाद रिजर्व बैंक के पास चलन से बाहर हुए 99.30 प्रतिशत नोट वापस आए। अर्थात लोगों ने 10,720 करोड़ रुपये के पुराने नोट वापस नहीं किए। नोटबंदी के तीन वर्ष बाद देश की अर्थव्यवस्था में नकली नोट की समस्या अब भी मौजूद है। इसे दूर करने के लिए रिजर्व बैंक को कदम उठाने की जरूरत है। देश की अर्थव्यवस्था को नकद रहित बनाने के लिए सरकार ने कई कदम उठाए लेकिन इससे जुड़ी धोखाधड़ी की समस्या का हल खोजना जरूरी है।

निशांत महेश त्रिपाठी, नागपुर

नोटबंदी के तीन साल होने पर यूथ कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने रिजर्व बैंक के सामने विरोध प्रदर्शन किया *-पीटीआई*

जागरूकता ही उपाय है

मानव द्वारा विकास के अप्राकृतिक तरीके अपनाने के कारण ही प्रदूषण की समस्या पैदा हुई है। आज प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है। इसने पर्यावरण को बेहद नुकसान पहुंचाया है। हमें जल के संयमित उपयोग पर ध्यान देना होगा क्योंकि भूजल तेजी से घट रहा है। सबमर्सिबल पंपों के इस्तेमाल ने स्थिति को ज्यादा बिगाड़ दिया है। उधर, वन धरा के आभूषण हैं किंतु विकास के नाम पर तेजी से वन काटे जा रहे हैं। पर्यावरण विशेषज्ञों का भी मत है कि मानव के अस्तित्व के लिए भूतल का एक तिहाई भाग वन क्षेत्र होना चाहिए। लोगों को जागरूक करने, विकास के अप्राकृतिक तरीके त्यागने व प्रकृति से सहचर्य करने में ही प्रदूषण रोकने का स्थायी समाधान निहित है।

डॉ. एम एस सिद्दीकी, फर्रुखाबाद

तरक्की सही लेकिन अंकुश लगे प्रदूषण पर

प्रदूषण एक ऐसा मुद्दा है जो हमें प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। यह एक तथ्य है कि भारत के जिन नगरों और महानगरों में लोग ज्यादा रहते हैं, वे सबसे ज्यादा प्रदूषित हैं। देश की राजधानी दिल्ली हो या फिर उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ सभी जगहों पर लोग प्रदूषण से समान रूप से त्रस्त हैं। भारत के 20 प्रमुख प्रदूषित शहरों में हरियाणा के 12 शहरों का होना बेहद चिंताजनक है। एक शोध किए जाने की जरूरत है कि कैसे जापान अमेरिका, जर्मनी जैसे देशों ने तरक्की भी की है और प्रदूषण के जहर से बचे भी हुए हैं। बहुत से त्योहार ऐसे हैं जिसमें लोग उत्सव मनाते हुए प्रदूषण फैलाते हैं। मनुष्य अगर प्रदूषण कर सकता है तो जागरूक होकर प्रदूषण के कारकों को पहचानकर उसे कम भी कर सकता है। प्रदूषण पूरी तरह से खत्म कर पाना तर्कसंगत नहीं लगता पर इसकी गति को कम करके कुछ राहत मिल सकती है।

डॉ रसिकेश, जौनपुर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।